अनुबोधन, खण्ड 2, अंक 2, अप्रैल–जून 2026, पृष्ठ 67–72
जर्नल वेबसाइटः
https://anubodhan.org
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट) 3108-1185 (ऑनलाइन)
https://doi.org/10.65885/anubodhan.v2n2.2026.062

मनुस्मृति और श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित वर्णव्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

मधुरिमा प्रियंवदा [1]

प्राप्तिः 8 जून 2026 / स्वीकृतः 13 जून 2026 / प्रकाशित ऑनलाइन: 26 जून 2026
Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

सारांश

यह पाठ भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था के ऐतिहासिक, दार्शनिक और सामाजिक विकास का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था गुण और कर्म पर आधारित एक कार्य-विभाजन प्रणाली थी, जिसका उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में प्रतीकात्मक रूप से मिलता है, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को मानव शरीर के विभिन्न अंगों से उत्पन्न बताया गया है। इस रूपक का उद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गों की परस्पर उपयोगिता और महत्व को दर्शाना था, न कि किसी प्रकार की श्रेष्ठता या हीनता स्थापित करना। समय के साथ, विशेषकर मनुस्मृति के आगमन के बाद, यह व्यवस्था कठोर और जन्म-आधारित हो गई, जिससे सामाजिक असमानता को बढ़ावा मिला। मनुस्मृति में प्रत्येक वर्ण के कर्तव्यों को निश्चित कर दिया गया और वर्ण परिवर्तन की संभावना समाप्त हो गई। इसके विपरीत, भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने वर्ण व्यवस्था को पुनः गुण और कर्म के आधार पर परिभाषित किया तथा उसे नैतिकता और कर्तव्य से जोड़ा। इस प्रकार, गीता का दृष्टिकोण अधिक समन्वयवादी और व्यावहारिक है, जो व्यक्ति को अपने स्वधर्म के पालन की प्रेरणा देता है। अंततः, यह स्पष्ट होता है कि वर्ण व्यवस्था का मूल स्वरूप लचीला और कार्य-आधारित था, जो समय के साथ विकृत होकर सामाजिक विषमता का कारण बना, जबकि गीता ने उसके मूल तत्त्वों को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।
बीज शब्दः वर्ण व्यवस्था, कर्म विभाग, भगवद्गीता, मनुस्मृति, जातियों की उत्पत्ति

प्रस्तुत शोध लेख में मैंने दोनों ग्रंथों में वर्णित वर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया है। वर्ण व्यवस्था भारतीय समाज की एक जटिल सामाजिक संरचना रही है, जिसकी शुरुआत गुण और कर्म आधारित विभाजन से होती है। जैसे-जैसे समय बीतता गया यह व्यवस्था सामाजिक असमानता का प्रतिरूप बन गई। आगे चलकर यह व्यवस्था स्वयं को श्रेष्ठ बनाने का आधार भी बनती गई। सर्वप्रथम इसका उल्लेख हमें वैदिक श्रुति साहित्य ऋग्वेद में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के 90 वॉ सूक्त पुरुष सूक्त में बताया गया है-

“ब्राह्मणोंऽस्य मुखमासीद्ध बाहू राजन्यःकृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भयां शूद्रो अजायत।”

अर्थात् विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई उनकी भुजा से क्षत्रिय की, उनकी जंघा से वैश्य की और पैरों से

[1] शोध छात्रा, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार
✉ मधुरिमा प्रियंवदा, E-mail: mp.del.chess@gmail.com

शूद्र की उत्पत्ति हुई है।[1] यहां पर यह एक प्रतीकात्मक रूप से समाज के कार्य विभाजन को दर्शाता है। मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई। यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि ज्ञान देने का कार्य बोलकर होता है और बोलने का कार्य मुख का होता है| अतः 'मुख' शरीर का सर्वोत्तम और उच्चतम भाग है। ज्ञान व्यक्ति को मानवोचित गुणों से विभूषित करता है इसलिए ज्ञान प्रदान करना श्रेष्ठतम कार्य हुआ, इसलिए इसके प्रदाता को श्रेष्ठ कहा गया और जिन व्यक्तियों ने इस कार्य के दायित्व का निर्वहन किया वे सर्वोच्च स्थान से उत्पन्न होकर ब्राह्मण कहलाए।

अब हम दूसरे प्रतीक पर ध्यान दें तो शरीर के मध्य भाग में भुजाएं हैं। भुजाएं अस्त्र-शस्त्र का संचालन कर सकती हैं और अस्त्र-शस्त्र का संचालन पूर्णता से वही कर सकता है जिसके बाहों में बल हो। यह भुजाएं रक्षा ही नहीं करतीं अपितु विनाश से भी बचाती हैं ।

"क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः"

जो क्षति यानि हानि या नाश से बचाय | इसलिए इन्हें क्षत्रिय कहा गया।

अब शरीर में 'जंघा' आती है उससे वैश्य की उत्पत्ति हुई। मानव शरीर को पोषाहार की आवश्यकता होती है और इसकी जो व्यवस्था करें और व्यवस्थाओं को विस्तार से इस काम को करने वाले लोग वैश्य कहलाए। अब पूरे शरीर का निचला भाग 'चरण' है जिस पर समस्त शरीर का भार है उसके बिना मानव संचरण तक नहीं कर सकता। उसे संचरणशील बनाने के लिए जो कार्य करें वे शूद्र कहलाए। यहां पर यह ध्यान देने की बात है कि इन प्रतीकात्मक वर्ण व्यवस्था में किसी भी वर्ण के महत्व को न्यून नहीं बताया गया है। शून्य ही पूर्णांक बनाती है इसे शूद्र के द्वारा दर्शाया गया है।

मनुस्मृति जो की मनुसंहिता, मानव धर्मशास्त्र, मानवशास्त्र आदि अनेक नाम से प्रचलित है, इसकी रचना राजर्षि मनु ने की पर कालांतर में अलग-अलग लेखकों ने इसमें अपने विचार, अपनी सोच को जोड़ा, अतः मनुस्मृति में वर्ण व्यवस्था को लेकर दो प्रकार के मत पाए जाते हैं। जहां कि एक ओर मनु के अनुसार, वर्ण व्यवस्था कर्म आधारित, गुण आधारित बताई गई है, वहीं दूसरी ओर यह जन्म आधारित बताई गई है। यह विरोधाभास है। किसी भी ग्रंथ में प्रक्षेप करना बहुत सरल हुआ करता था, कुछ तो जान बूझकर तो कुछ गलत अर्थ समझने की वजह से। वह ऐसे कि प्राचीन ग्रंथों की प्रतियां हस्तलिखित होती थीं और सारी प्रतिलिपियां एक समान अवस्था में एक स्थान से प्राप्त नहीं होती थीं, अतः इनमें मिलावट करना बड़ा ही सरल कार्य था। जिसके पास जो प्रति है उसकी आगे की बातें वे स्वविचार और चरित्र के अनुरूप लिखते थे। जबकि मनुस्मृति में समाज के लिए हितकारी, व्यवहारिक और युक्ति-युक्त विधि- विधान हैं। अतः यह सर्वमान्य ग्रंथ रही है। इसके प्रथम अध्याय के श्लोक 31 में कहा गया है-

''लोकों की वृद्धि के लिए मुख से ब्राह्मण, बाहु क्षत्रिय, उरु से वैश्य और पाद से शूद्र की उत्पत्ति हुई है।"

इसी प्रकार दशम अध्याय में महाराज मनु चारों वर्णों के कार्यों का निर्धारण करते हैं-

अध्यापनमध्ययनम यजनं याजनम तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः ।।

पराणां तु कर्माणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका। याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः।।

अर्थात् पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना छह कर्म ब्राह्मणों के हैं। इनमें तीन कर्म ब्राह्मण की जीविका हैं- यज्ञ करना, पढ़ना, शुद्ध द्विजातियों से दान लेना।

आगे के श्लोक में मनु कहते हैं कि ब्राह्मणों के तीन कर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान लेना क्षत्रिय ना करें। क्षत्रिय अस्त्र-शस्त्र धारण करें, वैश्य व्यापार करें।

"वेदाभ्यासो ब्राह्मनस्य क्षत्रियस्य च रक्षणाम् ।

वार्ताकर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु" ।।

अर्थात्, ब्राह्मणों का वेदाभ्यास करना, क्षत्रिय का रक्षा करना और वैश्या का वाणिज्य करना अपने-अपने कर्मों में विशेष कर्म हैं।

"न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रोदास्याद्विमुच्चते। निसर्गजहि ततस्य कस्तस्मातदपोहति।।"

अर्थात्, स्वामी से छुटाया हुआ शूद्र दास्य से नहीं छूट सकता क्योंकि वह उसका स्वाभाविक धर्म है उससे उसको कौन हटा सकता है।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं की वर्ण व्यवस्था को कठोर बना दिया गया और कहा गया कि व्यक्ति जन्म से ही विशिष्ट वर्ण का कहलाएगा अर्थात् ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय, वैश्य का पुत्र वैश्य और शूद्र का पुत्र शूद्र ही होगा। अब वर्ण व्यवस्था जन्मना तय कर दी गई। जो वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार तय होती थी, जिसके आधार पर एक वर्ण के व्यक्ति दूसरे वर्ण में प्रवेश कर सकते थे, अब इन व्यवस्थाओं के बीच जन्म की कठोर दीवार खड़ी की गई। इसी वर्ण व्यवस्था की तरलता ने ही तो विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बना दिया था और परशुराम को ब्राह्मण से क्षत्रिय बना दिया था, विदुर शूद्र थे पर समाज में महाज्ञानी और सम्मानित व्यक्ति थे। बाद में चलकर मनुस्मृति आर्यों का विधि ग्रंथ बनकर सामाजिक और असमानता का बीज बन गई।

आचार्य श्री सीताराम शर्मा जी अपनी पुस्तक, **"वर्ण व्यवस्था का संक्षिप्त इतिहास"** में गुण अनुरूप वर्ण ग्रहण करने को बहुत ही सरल तरीके से समझाया है।

"तस्मिन् काले स्थापयेत् तत्पुरस्ताद् वस्त्रम् शस्त्रम् पुस्तकम् लेखनिञ्च।
स्वर्णे रूप्यम् यच्च गृह्णाति बालस्तैराजीवैस्तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ।।"

अर्थात बालक या बालिका को जन्म से पांचवें मास में, शुभ दिन में पृथ्वी पर बैठाकर उसके आगे में ब्राह्मणोपयुक्त पुस्तक आदि वस्तु, क्षत्रियोपयुक्त शस्त्र आदि, वैश्योपयुक्त वस्तु सोना चांदी आदि तथा शूद्रोपयुक्त भार ढोने की वस्तु, गठरी आदि सब वस्तु रख देना चाहिए। बालक अपने पूर्व जन्म के अभ्यासकर्म तथा जन्म का लोपलब्ध गुण के अनुसार जिस वस्तु को ग्रहण करें या स्पर्श अथवा लेने की चेष्टा करें पिता को चाहिए कि उस बालक को मुख्य व्यवसाय इस वस्तु का करावे।महर्षिगण ऋषिकुल में प्रवेशार्थी छात्रों की बुद्धि की परीक्षा कर ही प्रवेश की अनुमति देते थे और उनको बुद्धिगम्य विद्याओं की शिक्षा दिया करते थे।[3]

वहीं डॉ. विवेक आर्य की पुस्तक **"मनुस्मृति को जाने"** में वह बताते हैं कि मनुस्मृति पर सबसे बड़ा आक्षेप जातिवाद को समर्थन देने का लगता है जबकि सत्य है कि मनुस्मृति जातिवाद नहीं अपितु वर्ण व्यवस्था का समर्थक है। वर्ण का निर्धारण शिक्षा के समाप्त होने के पश्चात निर्धारित होता था ना कि जन्म के आधार पर। मनु के अनुसार एक ब्राह्मण का पुत्र अगर गुण से रहित होता है तो शूद्र कहलाएगा, और अगर एक शूद्र का पुत्र ब्राह्मण के गुण वाला होगा तो ब्राह्मण कहलाएगा। यही व्यवस्था प्राचीन काल में प्रचलित थी, प्रमाण रूप में मनुस्मृति 9.335 श्लोक देखिए। शरीर और मन से शुद्ध पवित्र रहने वाला, उत्कृष्ट लोगों के सानिध्य में रहने वाला, मधुरभाषी, अहंकार से रहित, अपने से उत्कृष्ट वर्ण वालों की सेवा करने वाला शूद्र भी उत्तम ब्राह्म जन्म और द्विज वर्ण को प्राप्त कर लेता है।[4]

छांदोग्य उपनिषद में वर्णित है कि गुण और योग्यता को देख एक अज्ञात कुल वाले सत्यकाम जाबाल को गुरु ने ब्राह्मण वर्ण में दीक्षित किया था।[5]

डॉ सुरेंद्र कुमार अपनी किताब **"मनु का विरोध क्यों"** में बताते हैं- मनुस्मृति में एक ही साथ न्याय पूर्ण श्रेष्ठ विधान भी है और अन्याय पूर्ण निंद्य विधान भी। जब एक प्रबुद्ध सामान्य लेखक की रचना में इस प्रकार के परस्पर विरोध नहीं मिलते तो एक धर्मवेत्ता ऋषि के धर्म और विधि शास्त्र में ऐसे विरोध कैसे हो गए? जो न्यायपूर्ण, श्रेष्ठ और गुण कर्म योग्यता पर आधारित विधान है वह मनु के मौलिक श्लोक हैं, जो उनके विरुद्ध अन्याय और पक्षपात पूर्ण हैं वह प्रक्षिप्त हैं अर्थात् समय-समय पर बाद के लोगों ने रच कर मनुस्मृति में मिला दिए हैं। इस उत्तर की पुष्टि मनुस्मृति पर आधारित मापदंडों से हो जाती है। मौलिक श्लोक पूर्वापर प्रसंगों से विषयों से जुड़े हुए हैं और गुण-कर्म योग्यता के सिद्धांत पर आधारित गंभीर शैली में हैं जबकि प्रक्षिप्त श्लोक प्रसंग और विषयविरुद्ध तथा भिन्न शैली के हैं। इन आधारों के अनुसार अब हम कह सकते हैं कि इस लेख में उद्धृत श्लोक मौलिक हैं, इनकी भावना के विपरीत श्लोक प्रक्षिप्त हैं, जिन्हें कि मनु विरोधी लेखकों ने विरोध का आधार बनाया है।मनु की व्यवस्था वैदिक वर्ण व्यवस्था है जिसको डॉक्टर अंबेडकर ने भी स्वीकार किया है अतः गुण, कर्म, योग्यता के सिद्धांत पर आधारित जो श्लोक हैं वह मौलिक हैं।[6]

अब भगवद्गीता की बात करें मैंने जब **श्रीमद्भागवतगीता** का पाठ किया तो पाया कि **श्रीमद्भागवतगीता** भगवान **श्री कृष्ण** द्वारा **अर्जुन** को महाभारत का युद्ध शुरू होने के पहले दिया हुआ उपदेश है जिसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों की चर्चा की गई है। गीता हमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग का ज्ञान प्रदान करता है। कहने का अर्थ यह है कि गीता अपने आप में संपूर्ण ग्रंथ है जिसने इसे पढ़ लिया उसे कुछ और पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह जब भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया तब जितनी नई और प्रेरणादायी थी आज भी उतनी ही नई, स्फूर्तिवर्धक और प्रेरणादायी है। गीता को अगर हम अच्छे से पढ़ें और समझें तो यह पाएंगे की निष्काम कर्म ही सब कुछ है। अतः गीता को पढ़कर ही महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, रवींद्रनाथ टैगोर आदि जैसे महान देशभक्त और अरबिंदो घोष, रास बिहारी बोस, बारीन्द्र घोष जैसे क्रांतिकारी बड़े हुए और उन्होंने देशप्रेम की भावना हो या कर्मयोगी बनना या परसेवा की शिक्षा गीता से प्राप्त की है। विनोबा भावे ने अपनी पुस्तक **"गीता प्रवचन"** में यहां तक कहा है कि "**मेरा शरीर मां के दूध पर जितना पला है उससे कहीं अधिक मेरे हृदय और बुद्धि का पोषण गीता के दूध पर हुआ है।**" [7]

श्रीमद्भागवतगीता की वर्ण व्यवस्था समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। श्री कृष्ण ने वर्ण व्यवस्था हेतु वेदों में बताए गए सार तत्व को पुनः प्रस्तुत किया है।

"चातुर्वण्यर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ।।

मया गुणकर्मविभागशः चातुर्वण्यम् सृष्टम्, (अस्मिन् युगे) तस्य कर्तारम् अपि माम् अव्ययम अकत्तारम् विद्धि।
धर्म के श्रेष्ठ दो प्रकार के होते हैं एक तद्गुण कर्ता एक अव्यय कर्ता। वर्तमान युग में लोग जन्म के मिथ्या अभिमान में पड़कर चतुर्वर्ण्य के असली स्वरूप को भूल गए हैं। चतुर वर्ण का असली स्वरूप तो गुण कर्म विभाग पर आश्रित है। यहां पर कर्म को ही प्रधान बताया गया, इसे धर्म से जोड़कर इसके नैतिक स्वरूप को प्रतिपादित किया है। श्री कृष्ण ने भागवत गीता में कहा है- **"स्वधर्मे मरणोश्रीयः परधर्मः भयावहः"** कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करना चाहिए दूसरे का धर्म अपनाना भयकारी है। जो धारण करने योग्य है उसे धर्म कहते हैं। जो करने योग्य है, जो करना उचित है, जो करना चाहिए वह कर्तव्य है और जो कर्तव्य है वही धारण करने योग्य है। श्री कृष्ण का संदेश यही है। इस उदाहरण से हम समझे छात्र का कर्तव्य है मन से पठन-पाठन करना, यदि वह दूसरे धर्म में रास - रंग में डूब जाएगा तो वह धर्मच्युत हो जाएगा और परिणाम, असफलता भयावह होगी। एक पिता का धर्म है पालन पोषण करना, एक पुत्र का धर्म (कर्म) है माता-पिता की सेवा करना, तो यह धर्म और कर्तव्य हमारी पारिवारिक सामाजिक व्यवस्था में वही पुत्र भी पिता होता है और उसका धर्म बदल जाता है, यही वर्ण की मूल भावना गीता में बताई गई है। गीता के 41वें श्लोक में श्री कृष्ण कहते हैं-

ब्राह्मण-क्षत्रिय -विशाम् शूद्राणाम् च कर्माणि स्वभावप्रभवैः गुणैः प्रविभक्तानि"।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन सबको जो कर्म बाटें गए हैं वह उनके स्वाभाविक गुणों को देखकर ही बांटे गए हैं।

वर्ण व्यवस्था के लचीलेपन का वर्णन गीता के अन्य श्लोक में भी परिलक्षित होता है इसमें कहा गया है , अगर कोई व्यक्ति अपने वर्ण को स्वेच्छापूर्वक वरण किए गए हुए कर्म को छोड़ना चाहे तो पहले स्वभाव को बदले फिर कर्म को, जैसा कि विश्वामित्र ने किया था। काय-क्लेश के भय से तो स्वधर्म को कभी ना छोड़े, जैसा की आठवें श्लोक में कहा गया है। हां यदि किसी को स्वधर्म कम कठिन तथा परधर्म अधिक वीरता का प्रतीत हो तो तपश्चर्यापूर्वक उसे प्राप्त करना वर्जित नहीं है उल्टा शोभा का कारण है। [8] इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता में वर्ण व्यवस्था को पूर्णतः गुण आधारित और कर्म आधारित बताया गया है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपनी किताब श्रीमद्भागवत गीता रहस्य अथवा कर्म योग शास्त्र में लिखा है की कुछ लोग गीता के नीति धर्म को केवल चातुर्वर्ण्यमूलक समझते हैं लेकिन उनकी यह समझ ठीक नहीं है। गीताशास्त्र का तात्पर्य यही है कि समाज व्यवस्था चाहे कैसी भी हो उसमें जो यथाअधिकार कर्म तुम्हारे हिस्से में पड़ जाए उन्हें उत्साहपूर्वक करके सर्वभूतहितरूपी आत्मश्रेय की सिद्धि करो। इस तरह से कर्तव्य मानकर गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ व्यक्ति जो कर्म किया करते हैं वह स्वभाव से ही लोक कल्याणकारी हुआ करते हैं। तिलक जी कहते हैं, गीता धर्म क्या

है? वह सर्वोपरि निर्भय और व्यापक है। वह सम है अर्थात वर्ण, जाति देश या किसी अन्य भेद के झगड़े में नहीं पड़ता, किंतु सब लोगों को एक ही मापतौल से सद्गति देता है। वह अन्य सब धर्म के विषय में यथोचित सहिष्णुता दिखलाता है। वह ज्ञान भक्ति और कर्म युक्त है।[9]

जहां वर्ण व्यवस्था लाभदाई थी वही गीता की वर्ण व्यवस्था व्यापक लाभदायी हो गई, इसलिए गीता सभी धर्म में माननीय ग्रंथ मानी गई।

वर्ण व्यवस्था पर महात्मा गांधी का अपना विचार था। उन्होंने अपनी हरिजन 1933 जैसे लेखों में भागवत गीता का हवाला देते हुए वर्ण व्यवस्था को व्यक्तिगत कर्तव्य और आनुवंशिक व्यवसाय के रूप में व्याख्या की है। गांधी जी का मानना था कि वह जन्म से तय होते हैं लेकिन वह पदानुक्रम नहीं बल्कि कर्तव्यों का विभाजन है जिसमें सभी वर्ण समान हैं।[10] महात्मा गांधी जी ने भी अपनी **"वर्ण व्यवस्था"** नामक पुस्तक में माना है कि वर्तमान मनुस्मृति में पाई जाने वाली आपत्तिजनक बातें बाद में की गई मिलावट है।[11] **भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ राधाकृष्णन, श्री रवींद्रनाथ टैगोर भी मनुस्मृति में की गई मिलावट को स्वीकारते हैं।**

महात्मा गाँधी और आंबेडकर जी के विचार भिन्न थे हालाँकि दोनों समाज सुधारक थे।

डॉ भीमराव अंबेडकर जातिप्रथा और वर्ण व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त करना चाहते थे अतः उन्होंने अपनी पुस्तक **"एनीहिलेशन ऑफ कास्ट"** 1936 में, अंबेडकर ने धार्मिक ग्रंथो विशेष कर मनुस्मृति का कड़ा विरोध किया। उन्होंने कहा कि वर्ण व्यवस्था केवल श्रम का विभाजन नहीं है बल्कि यह श्रमिकों का विभाजन है, जिसे धार्मिक पाखंड के माध्यम से संस्थागत रूप दिया गया है। अंबेडकर जी ने मनुस्मृति को **"ब्राह्मणवाद की मूल संहिता"** कहा है।[12]

सभी ने वर्ण व्यवस्था को अपने-अपने नजरिये से देखा और अपना-अपना अनुभव किताब या पत्रिका के माध्यम से जनमानस तक पहुंचाया। पर इतिहास को गलत ढंग से जनमानस के सामने परोसने का यह परिणाम हुआ कि वर्ण जातियों में बदल गई और जातियां आपसी भेदभाव, मतभेद, मनभेद का कारण बनीं जो राष्ट्र हित के खिलाफ थी, खिलाफ रही हैं और रहेंगी। इसी कड़ी को आगे बढ़ते हुए रविंद्र शुक्ला रवि जी की किताब **"वर्ण व्यवस्था की मौलिक अवधारणा और विकृति"** में उन्होंने कहा है कि वर्ण व्यवस्था गुण और कर्म पर आधारित थी जो समय के साथ जन्म आधारित हो गई।[13]

आर्य समाज ने वेदों को आधार मानते हुए वर्ण व्यवस्था को गुण-कर्म स्वभाव पर आधारित बताया और जन्म आधारित जाति प्रथा का विरोध किया।स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी किताब **"ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका:"** में लिखा है, गुण-कर्मों को देखकर यथा योग्य अधिकार जिसको दिया जाए वह वर्ण है।[14] अपनी किताब **"सत्यार्थ प्रकाश"** में स्वामी दयानंद सरस्वती जी मनुस्मृति के उदाहरण को मानते हुए इस श्लोक को उद्धृत करते हैं।

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जतमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।"

जो शूद्र कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाए वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हो तो वह शूद्र हो जाए। वैसे क्षत्रिय, वैश्य के कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण व शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो सकता है अर्थात् चारों वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदस्य जो जो पुरुष वा स्त्री हो वह उसी वर्ण में गिनी जावें।

"धर्मचय्यर्य्या जघन्य वर्णः पूर्वम पूर्वम वर्णमापद्दते जातिपरिवृत्तौ।।
अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णों जघन्यम् जघन्यम् वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।"

ये आपस्तम्ब के सूत्र हैं। धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह इस वर्ण में गिना जावे कि जिस-जिस के योग्य होवे। वैसे अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे-नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जाए।

स्वामी जी कहते हैं कि जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिए। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने-अपने गुण कर्म स्वभाव युक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात ब्राह्मण कुल में कोई क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के सदस्य ना रहे और क्षत्रिय वैश्य तथा शुद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं अर्थात वर्णसंकर प्राप्त न होगी| इससे किसी वर्ण की निंदा और अयोग्यता भी नहीं होगी।[15]

अगर हम भरत झुनझुनवाला की किताब "वर्ण व्यवस्था गवर्नेंस थ्रू कास्ट सिस्टम" में वर्ण व्यवस्था को शासन के दृष्टिकोण से विश्लेषित किया। उन्होंने यह बताने की कोशिश की कि यह प्रणाली व्यक्तिगत विकास सुशासन के बीच संतुलन बनाती है।[16]

निष्कर्ष

मनुस्मृति और गीता के तुलनात्मक अध्ययन को करते हुए हमने जितने भी लेखकों की किताबों का अध्ययन किया उसमें यह पाया कि वर्ण व्यवस्था समाज को सुसंचालित करने के लिए बनाई गई थी ताकि हर व्यक्ति अपने दायित्व का अच्छे से निर्वहन करें और एक सभ्य, सुसंगठित समाज का निर्माण हो। समाज में संतुलन और व्यवस्था बनी रहे, मानव को नियमबद्ध नैतिक और आदर्श मानवीय जीवन जीने की शिक्षा दे सके। यह वे ग्रंथ हैं जो औषधि के समान हितकारी, गुणकारी और जीवनदायी माने जाते हैं। बाद के लेखकों ने इसमें मिलावट कर दी जिसको गांधी जी ने और दयानंद सरस्वती जी ने भी माना है। इसके नियम में लचीलापन था, व्यक्ति एक वर्ण से दूसरे वर्ण के कार्य को, प्रतिभा को अपना कर अपने वर्ण को बदल सकता था परंतु कालांतर में इसके स्वरूप में भी परिवर्तन आता गया और यह कठोर हो गई और अनेक जातियों की उत्पत्ति का आधार बनी।

संदर्भ सूची

1. सहाय, गंगा शर्मा. (2014). *ऋग्वेद*. दिल्ली: संस्कृत साहित्य प्रकाशन
2. द्विवेदी, गिरजा प्रसाद (अनुवादक). (1917). *मनुस्मृति*. लखनऊ: नवल किशोर प्रेस
3. शर्मा, आचार्य श्री सीताराम, संशोधन, गुप्त श्री वासुदेव, (nd). *वर्ण व्यवस्था का संक्षिप्त इतिहास*. चौखंबा कृष्ण दास अकैडमी
4. आर्य, विवेक. (2023). *मनुस्मृति को जानें*. नई दिल्ली: नव चेतना प्रकाशन
5. छांदोग्य उपनिषद
6. कुमार, सुरेंद्र, (nd.). (2021). *मनु का विरोध क्यों*. नई दिल्ली: आर्ष साहित्य प्रचार
7. भावे, विनोबा. अनुवादक, उपाध्याय, हरिभाऊ. (1955). *गीता प्रवचन*, , नई दिल्ली : सत्साहित्य प्रकाशन
8. भाष्यकार, सरस्वती, स्वामी समर्पणानन्द, प्रधान संपादक, कुमार धर्मेंद्र, सह संपादक चंद्र प्रद्युमन (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता*. दिल्ली: दिल्ली संस्कृत अकादमी प्रकाशन
9. तिलक, लोकमान्य बाल गंगाधर. अनुवादक, सप्रे माधवराव, संशोधन एवं संपादन, शर्मा, ओमप्रकाश. (2025). *श्रीमद्भागवद्गीता रहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र*. दिल्ली : मनोज प्रकाशन
10. गांधी, महात्मा. (1933-1955). *हरिजन*. पुणे : आईएसआईएस प्रकाशन
11. गांधी, महात्मा. (1945). *वर्ण व्यवस्था*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन मंदिर
12. अंबेडकर, भीमराव. (1936). *एनीहिलेशन ऑफ कास्ट*
13. शुक्ला, रविंद्र रवि. (2014). *वर्ण व्यवस्था की मूल अवधारणा और विकृति*. लखनऊ : लोकहित प्रकाशन
14. सरस्वती, दयानंद. (2010). *ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका*. दिल्ली: आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
15. सरस्वती, दयानंद. (1875) 69वां संस्करण. *सत्यार्थ प्रकाश*. दिल्ली: आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
16. झुनझुनवाला, भरत. (1999). *वर्ण व्यवस्था गवर्नेंस थ्रू कास्ट सिस्टम*. जयपुर : रावत प्रकाशन